

# B.Ed.

## BLOCK 1

### UNIT 3

#### Disciplinary Knowledge:Characteristics

Mrs. Rashmi Trivedi

M.Sc(Geology), M.Ed.,M.Phill(Education)

Victoria College of Education,Bhopal

Mobile no. 9424414100

E-mail the\_rashmi@yahoo.com

---

## इकाई 3 अनुशासनात्मक ज्ञान – विशेषताएँ

---

### संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 अनुशासनात्मक ज्ञान – विशेषताएँ
- 3.4. सार्वभौमिकता
  - 3.4.1 सार्वभौमिकता की विशेषताएँ
  - 3.4.2 लघु से बृहत् परम्परा स्थानांतरण
- 3.5 वस्तुनिष्ठता
  - 3.5.1 वस्तुनिष्ठता का अर्थ
  - 3.5.2 वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता
  - 3.5.3 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन अथवा विधियाँ
- 3.6 मूल्य
  - 3.6.1 मूल्य का अर्थ
  - 3.6.2 मूल्य की अवधारणा
  - 3.6.3 मूल्यों का वर्गीकरण
  - 3.6.4 मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता
- 3.7 संस्कृति
  - 3.7.1 संस्कृति का अर्थ
  - 3.7.2 संस्कृति की अवधारणा
  - 3.7.3 संस्कृति निष्पक्षता /तटस्थता
- 3.8 अवैयक्तिकता
- 3.9 सत्यापन और प्रमाण
- 3.10 सारांश
- 3.11 चिंतन के लिए प्रश्न
- 3.12 प्रगति की जांच के लिए उत्तर
- 3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

## 3.1 प्रस्तावना

---

अनुशासनात्मक ज्ञान एक महत्वपूर्ण एवं जटिल क्षेत्र है। इसकी महत्ता इसलिए भी अधिक है, क्योंकि आधुनिक समाज में ज्ञान क्रिया आधारित करने पर जोर दिया जा रहा है। अनुशासनात्मक ज्ञान का सम्बन्ध अधिगम प्रक्रिया की ऐसी युक्तियों से है जिनके फलस्वरूप बालकों को अपने वैज्ञानिक क्रियाकलाप वस्तु का प्रेक्षण करने और उसके साथ पारस्परिक क्रिया करने के अवसर मिलते हैं और इस प्रकार से विभिन्न प्रकार की दक्षताएँ भी प्राप्त कर लेते हैं। इस ज्ञान की सहायता से बालक किसी नियम, सिद्धांत, वस्तु आदि के बारे में परिचित हो जाता है और इसका प्रयोग वह विभिन्न दक्षताओं, कौशल एवं विचारों को विकसित करने में करता है। अन्ततः इसका उद्देश्य सार्थक और ठोस ज्ञानार्जन है। इसके फलस्वरूप समेकित अध्ययन संभव है। वैज्ञानिक पद्धति, समस्या समाधान पद्धति, अनुशासनात्मक पद्धति सभी एक दूसरे के पर्यायवाची हैं।

---

## 3.2 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप —

- अनुशासनात्मक ज्ञान की व्याख्या कर सकेंगे।
- अनुशासनात्मक ज्ञान की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- सार्वभौमिकता के विचार और अर्थ को समझ सकेंगे।
- वस्तुनिष्ठता के अर्थ और महत्व को समझ सकेंगे।
- मानव जीवन में मूल्यों की भूमिका और प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे।
- मानव जीवन में संस्कृति की भूमिका और प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे।

---

### 3.3 सार्वभौमिकता

---

सार्वभौमिकता की अवधारणा स्थानीयकरण की अवधारणा के विपरीत है। शाब्दिक दृष्टि से सार्वभौमिकता का आशय किसी संस्कृति विशेषता का प्रत्येक स्थान में प्रसार होना है। मैकिम मेरियट ने सार्वभौमिकता की प्रक्रिया का उल्लेख किसी ऐसी स्थिति के लिए किया है, जिसमें स्थानीय एवं लघु परम्पराओं से धीरे-धीरे बहुल परम्परा का निर्माण होता है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक जीवन को सुस्पष्ट करने के लिए सार्वभौमीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण अवधारणा है।

सार्वभौमिकता की प्रक्रिया का उल्लेख मिल्टन सिंगर एवं रावर्ट रेडफील्ड ने किया था। बाद में इसका प्रयोग मैकिम मेरियट ने लघु परम्परा एवं वृहत् परंपरा के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए किया। उन्होंने स्वयं अपनी सम्पादित कृति 'विलेज इण्डिया' में लिखा है कि, यह समझने के लिए कि अक्सर प्राचीन संस्कृत कर्मकाण्ड, असंस्कृत कर्मकाण्डों को हटाए बिना उनसे क्यों जुड़ जाते हैं? हमें उस प्रक्रिया को समझना होगा जो स्वदेशी सभ्यता से सम्बन्धित है।

परिभाषा के दृष्टिकोण से स्वदेशी सभ्यता वह है जिससे सम्बद्ध वृहत् परम्पराओं की उत्पत्ति पहले से विद्यमान छोटी परम्पराओं के तत्वों के मिलने से होती है। वृहत् परम्पराओं की इस प्रक्रिया को हम सार्वभौमिकता, सार्वभौमीकरण या सर्वदेशीकरण के नाम से जानते हैं। स्पष्ट है कि जब स्थानीय लघु या छोटी परम्पराओं के मिलने से एक बड़ी परम्परा का निर्माण होता है तथा उनका विवेचन धर्मग्रन्थों में कर लिया जाता है तब संस्कृति के प्रसार की प्रक्रिया सर्वभौमिकता कहलाती है।

#### मेरियट के अनुसार

जब लघु परंपरा के तत्व (देवी- देवता, संस्कार आदि) ऊपर की ओर बढ़ते हैं अर्थात् उनका फैलाव का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, जब वे वृहत् परम्परा स्थिर तक पहुँच जाते हैं और उनका मूल स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, तो इस प्रक्रिया को हम सार्वभौमीकरण कहते हैं।" सार्वभौमिकता की प्रक्रिया का तात्पर्य वृहत् परम्परा का उन

तत्वों से निर्मित होना है जो छोटी परम्पराओं में पहले से ही विद्यमान होते हैं तथा जिनसे वृहत् परम्पराएँ सदैव आच्छादित रहती हैं। जब लघु परम्परा से सम्बन्धित सांस्कृतिक तत्वों के फैलाव का क्षेत्र बढ़ता जाता है तो इस दौरान उनका स्वरूप भी बदल जाता है। ये सांस्कृतिक तत्व कालान्तर में धीरे-धीरे वृहत् परम्परा के अंग बन जाते हैं। जब लघु परम्परा के तत्व देवी देवता, प्रथाएँ संस्कार वृहत् परम्परा के स्तर तक प्रचलित हो जाते हैं और उन्हें वृहत् परम्परा का ही अंग माना जाने लगता है तो इस प्रक्रिया को सार्वभौमिकता से ही जानते हैं।

### 3.4.1 सार्वभौमिकता की विशेषताएँ

1. सार्वभौमिकता की प्रक्रिया का विकास लघु एवं वृहत् परम्पराओं के पारस्परिक सम्बन्धों में होता है।
2. सार्वभौमिकता में लघु परम्पराएँ अपना अस्तित्व समाप्त नहीं करती, वरन् वे अपने अस्तित्व को बनाए रखने के बाद भी अपने से भिन्न एक नई वृहत् परम्परा का निर्माण करती हैं।
3. लघु एवं वृहत् दोनों परम्पराएँ पवित्रता के दृष्टिकोण से समान रूप से बनी रहती हैं। इसका आशय है कि किसी समाज में अधिकांश व्यक्ति इन परम्पराओं में समान रूप से भाग लेते हैं और दोनों से सम्बद्ध कर्मकाण्डों को पूरा करना अनिवार्य मानते हैं।
4. इस प्रकार वृहत् परम्पराएँ पूर्णतः नवीन दिखाई देने के बाद भी पूरी तरह नवीन नहीं होती, बल्कि वे वृहत् परम्पराएँ मूलतः लघु परम्पराओं का ही संशोधित रूप होती हैं।
5. सार्वभौमिकता स्थानीय धार्मिक विश्वासों एवं कर्मकाण्डों का व्यापक विस्तार है।

### 3.4.2 लघु से वृहत् परम्परा स्थानांतरण

मैकिम मैरियट ने किशनगढ़ी के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि यहाँ दीपावली के अवसर पर गाँववासी अपने घर दीवार पर चावल के आटे से एक

प्रतिमा बनाते हैं जिसे ग्रामीण भाषा में यहाँ के निवासी “सौरती” कहते हैं। सौरती देवी की पूजा करना दीपावली के दिन यहाँ के ग्रामीणों के लिए अनिवार्य है। यहाँ सौरती के अलावा लक्ष्मी की पूजा भी दीपावली पर की जाती है। सौरती से सम्बन्धित विश्वास लघु परम्परा से सम्बन्धित है, लेकिन जब इसका फैलाव ऊपर की ओर होता गया तो इस लम्बी यात्रा में उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया और उसने लक्ष्मी का रूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार एक क्षेत्र विशेष में प्रचलित लघु परम्परा (सौरती पूजा) कहलाता में वृहत् परम्परा (लक्ष्मी पूजा) में बदल गई। यह स्थानांतरण सार्वभौमिकता कहलाता है।

### अपनी प्रगति की जाँच करें

**निर्देश:** अ) अपने उत्तर प्रत्येक प्रश्न के बाद दिए गए रिक्त स्थान में लिखें।

व) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न—1 सार्वभौमिकता की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 3.5 वस्तुनिष्ठता

---

वस्तुनिष्ठता किसी अध्ययन से सम्बन्धित वह विशेषता है जो यथार्थ अवलोकन पर आधारित होती है। जब हम अपने धर्म, जाति प्रजाति, विश्वास-क्षेत्र एवं निजी विचारों से पृथक् रहकर कोई अध्ययन करता है, तब ऐसे अध्ययन को हम वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहते हैं। ऐसे अध्ययन का उद्देश्य किसी तथ्य की अच्छाई-बुराई अथवा उससे सम्बन्धित उचित और अनुचित को देखना नहीं होता बल्कि तथ्यों का विश्लेषण करना होता है। इस प्रकार उनके वास्तविक रूप में प्रवृत्ति तथा वैज्ञानिक प्रयास की संयुक्तता को ही हम वस्तुनिष्ठता के अर्थ के रूप में स्पष्ट करते हैं।

### 3.5.1 वस्तुनिष्ठता का अर्थ

ग्रीन (A.W.Green) के शब्दों में— “वस्तुनिष्ठता निष्पक्ष रूप से किसी तथ्य का परीक्षण करने की इच्छा और योग्यता है।” इस कथन से स्पष्ट होता है कि वस्तुनिष्ठता एक ऐसी विशेषता है जिसमें निष्पक्ष अध्ययन की इच्छा और योग्यता दोनों का होना आवश्यक है। इच्छा का तात्पर्य विभिन्न घटनाओं को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने की इच्छा से है जबकि ‘योग्यता’ का सम्बंध व्यक्तिनिष्ठता को दूर रखने की कुशलता से है। इसका तात्पर्य है कि एक अध्ययनकर्ता जब कुशलतापूर्वक तथ्यों को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है तब इसी विशेषता को हम वस्तुनिष्ठता कहते हैं।

फेयर चाइल्ड (Fair Child) के अनुसार — “ वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय एक ऐसी योग्यता से है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन दशाओं से पृथक् रख सके जिसका कि वह स्वयं एक अंग है तथा किसी तरह के लगाव अथवा भावना के स्थान पर पक्षपातरहित और पूर्वाग्रहों से मुक्त तर्कों के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके स्वाभाविक रूप में देख सके।”

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि घटनाओं को स्वाभाविक रूप में देखना ही वस्तुनिष्ठता का वास्तविक आधार है। वस्तुनिष्ठता के अभाव में किसी भी अध्ययन को

वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता चाहे वह वाह्य रूप से कितना ही श्रम-साध्य और आकर्षक प्रतीक क्यों न होता हो।

### 3.5.2 वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

वस्तुनिष्ठता के अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठता सबसे अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण तथ्य है। इसके बिना किसी अध्ययन का कोई भी वैज्ञानिक मूल्य नहीं रह जाता। वास्तव में वैज्ञानिक अध्ययन का आधारभूत उद्देश्य एक सर्वभौमिक निष्कर्ष प्राप्त करना होता है जो वस्तुनिष्ठता के द्वारा ही सम्भव है।

#### 1 यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए

यह सच है कि प्रत्येक अध्ययन का उद्देश्य कुछ विशेष तथ्यों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना होता है लेकिन सामाजिक घटनाओं के सन्दर्भ में इस प्रवृत्ति की आवश्यकता कहीं अधिक है। सामाजिक अनुसंधानों में वस्तुनिष्ठता के द्वारा ही यथार्थ और उपयोगी ज्ञान का संचय करना सम्भव है। सामाजिक परिवर्तन के कारण आज विभिन्न सामाजिक घटनाओं एवं मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इस स्थिति में एक वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर ही समकालीन दशाओं से सम्बन्धित यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

#### 2 वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए

वस्तुनिष्ठता और वैज्ञानिक पद्धति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना निरर्थक है। इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति की प्रथम शर्त वस्तुनिष्ठता है और इसकी प्राप्ति वस्तुनिष्ठ पद्धति के द्वारा ही सम्भव है। अतः यदि हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक पद्धति का सफल प्रयोग है तो अपने अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का प्रयत्न हमें करना ही होगा। वास्तविकता यह है कि यदि अध्ययन-कार्य में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाया गया तो सत्य की खोज कठिन होने पर भी असम्भव या दूर



का सपना नहीं रह जायेगी। पर यदि वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाया नहीं गया तो केवल वैज्ञानिक पद्धति हमें सत्य निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा सकेगी।

### **3 सामान्य भ्रान्तियों को दूर करने के लिए**

मानव की यह प्रवृत्ति है कि वह अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर ही बहुत भ्रमों को विकसित कर लेता है यथा विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को समझने के लिए अपने विश्वासों को ही निर्णायक मानता रहता है। ऐसी सभी भ्रान्तियों को केवल वस्तुनिष्ठ अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अभी तक यह एक सामान्य भ्रान्ति थी कि अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तानें मूर्ख, अकुशल, अविवेकी यथ कभी— कभी अपंग होती है। इसके विपरीत जब वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित वस्तुनिष्ठ अध्ययन किये गये तो यह निष्कर्ष निकला कि अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तानें उन माता — पिता के बच्चों से अधिक योग्य एवं कुशल होती हैं जिन्होंने अपनी जाति में विवाह किया हो।

### **4 अनुसंधान के नये क्षेत्रों को विकसित करने के लिए**

एक अध्ययनकर्ता जब वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर अध्ययन कार्य करता है तो अनेक ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो जाते हैं जिन पर पहले कभी विचार नहीं किया गया था। यद्यपि ऐसे तथ्यों का अनावरण करना अध्ययनकर्ता का उद्देश्य नहीं होता लेकिन तो भी उसे आकस्मिक रूप से ऐसे तथ्य प्राप्त हो जाते हैं। इससे अनुसंधान के अनेक नये क्षेत्र स्पष्ट होते हैं तथा विभिन्न अध्ययनकर्ताओं को उनका व्यापक रूप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। सच तो यह है कि वस्तुनिष्ठता के आधार पर हम ज्ञान के क्षेत्र में जितना आगे बढ़ते जाते हैं हमें अनेक नवीन लेकिन महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते रहते हैं।

### **5 निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए**

सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की सर्वप्रथम आवश्यकता व उसका महत्व यह है कि इसके बिना निष्पक्ष निष्कर्षों तक पहुँचना अनुसंधानकर्ता के लिए कदापि संभव नहीं। वस्तुनिष्ठता का अर्थ ही है पक्षपातरहित होकर घटनाओं की वास्तविकताओं को ढूँढ निकालना। अतः योग्य निष्कर्षों तक पहुँचना अनुसंधानकर्ता के लिए तब तक

सम्भव नहीं होता तब तक उसमें वस्तुनिष्ठ अध्ययन या अनुसंधान करने की क्षमता न हो। इस अर्थ में वस्तुनिष्ठता वह साधन है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

## **6 तथ्यों के सत्यापन के लिए आवश्यक**

वैज्ञानिक अध्ययन की एक प्रमुख विशेषता उसकी सत्यापनशीलता है। इसका तात्पर्य है कि किसी भी ऐसे अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता जिससे प्राप्त तथ्यों की पुनर्परीक्षा न की जा सकती हो। अध्ययन से सम्बन्धित निष्कर्ष यदि यथार्थ हों तो उनकी किसी भी समय पुनर्परीक्षा करके उनका सत्यापन किया जा सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता इसलिए भी आवश्यक है जिससे सम्बन्धित निष्कर्षों का कोई भी अन्य अध्ययनकर्ता सत्यापन कर सके।

### **3.5.3 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन अथवा विधियाँ**

अपने अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर सामाजशास्त्रियों ने उन अनेक साधनों का पता लगा लिया है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। कहा जा सकता है कि वस्तुनिष्ठ रहने की इच्छा और वस्तुनिष्ठ करने में प्रयत्नशील करना इस दिशा में महत्वपूर्ण है। तटस्थ रहने की इच्छा का सम्बन्ध स्वयं अनुसंधानकर्ता से है और उनकी अभिव्यक्ति इस रूप में होती है कि अनुसंधानकर्ता स्वयं वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए सचेत रहता है। उसके लिए समस्त व्यक्तिगत राग-द्वेष, विचार मूल्य, पक्षपात, मिथ्या-झुकाव आदि से हर पग पर बचता है। दूसरी ओर, वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न इस बात का द्योतक है कि उसका अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ हो सके। इन इच्छाओं तथा प्रयत्नों को ही उन साधनों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं।

## 1 अवधारणाओं का मानवीकरण

समाजिक घटनाओं के अध्ययन में अनेक ऐसे महत्वपूर्ण शब्दों अथवा अवधारणाओं का उपयोग होता है जिनका अर्थ स्पष्ट न होने से सम्पूर्ण अध्ययन दोषपूर्ण बन जाता है। विभिन्न अवधारणाओं का अर्थ स्पष्ट न होने से शोधकर्ता सूचनादाता एवं सामान्य व्यक्ति उसका अलग-अलग अर्थ लगाने लगते हैं। विभिन्न शब्दों और धारणाओं को जब एक सुनिश्चित रूप प्राप्त हो जाता है तो सभी शोधकर्ता सूचनादाता और विवेचनकर्ता उनका समान अर्थों में उपयोग करते हैं जिसके फलस्वरूप अध्ययन में वस्तुनिष्ठता आने की सम्भावना बढ़ जाती है।

## 2 सामूहिक अनुसंधान

शोधकर्ता में व्यक्तिगत अभिनति को दूर करने तथा वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में सामूहिक अनुसंधान का भी विशेष महत्व है सामूहिक अध्ययन प्रमुख रूप से दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम एक ही समस्या का किसी विशेष अध्ययन-पद्धति द्वारा और दो या अधिक शोधकर्ताओं द्वारा अध्ययन किया जाय और बाद में वे एक-दूसरे की सहायता से अन्तिम निष्कर्षों को प्रस्तुत करें। ऐसी विधि से व्यक्तिनिष्ठता से सम्बन्धित दोषों की सम्भावना बहुत कम रह जाती है दूसरा तरीका यह है कि एक ही प्रकार की समस्या का दो या दो से अधिक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा अलग-अलग-विरोधाभासों को दूर करके एक सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाय।

## 3 प्रयोगसिद्ध पद्धतियों का उपयोग

अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का सर्वप्रमुख व उल्लेखनीय साधन यह है कि सम्पूर्ण अध्ययन कार्य में कहीं भी काल्पनिक या दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक विचारों को कोई भी स्थान न देकर केवल प्रयोग सिद्ध पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। प्रयोगसिद्ध पद्धति से हमारा तात्पर्य अध्ययन की ऐसी प्रणाली से है जो कि वास्तविक निरीक्षण सुनिश्चित तथ्य परिमाणत्मक आंकड़ों तथा ठोस प्रमाणों पर आधारित हो और सर्वप्रकार से गुणात्मक दृष्टिकोण से बिल्कुल परे हो। प्रयोगसिद्ध प्रणाली व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों भावनाओं, आदर्शों, मूल्यों या मानदण्डों पर विश्वास नहीं करती है और न ही इन्हीं के आधार पर अपने निष्कर्षों को प्रभावित होने देती है।

#### **4 अनुसूची एवं प्रश्नावली प्रविधियों का प्रयोग**

वस्तुनिष्ठ अनुसंधान के लिए यह भी आवश्यक है कि हम अपने अनुसंधान- कार्य में उन प्रविधियों का प्रयोग करें जिनमें पक्षपात तथा मिथ्या-झुकाव के प्रवेश की सम्भावनायें न्यूनतम हों। निरीक्षण पद्धति में इस प्रकार की सम्भावना अधिक होती हैं। अतः प्रश्नावली एवं अनुसूची प्रविधियों को अधिक निर्भर योग्य माना गया है। इनमें कुछ प्रमाणित प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर सूचनादाताओं को देना होता है। अतः स्वयं अनुसंधानकर्ता का पक्षपात तथा मिथ्या-झुकाव इसमें अधिक हस्तक्षेप नहीं कर पाता है इसके सिवा कि प्रश्नों को ही वह तोड़ मरोड़कर प्रश्नावली में प्रस्तुत किया जाता है। वे सभी मानवीकृत होते हैं।

#### **5 दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग**

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति में एक कठिनाई दोषपूर्ण ढंग से निदर्शनों का चुनाव करने के कारण भी उत्पन्न होती है। अपनी किसी पूर्वधारणा या पक्षपात के कारण अनुसंधानकर्ता ऐसे निदर्शनों को चुनता है जो कि उस घटना का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस दोष से बचने के लिए दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग लाभप्रद सिद्ध होता है।

#### **6 अन्तर- अनुशासनिक विधि का प्रयोग**

सामाजिक घटनाओं के गहन, निष्पक्ष तथा यथार्थ अध्ययन के लिए आजकल अन्तर अनुशासनिक विधि को बहुत उपयोगी समझा जाने लगा है। यह वह विधि है जिसके द्वारा किसी समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन विभिन्न विषयों के विद्वानों द्वारा पारस्परिक सहयोग से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी समस्या के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों का अध्ययन क्रमशः अर्थशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा मिल – जुलकर किया जाय तब हम इस पद्धति को अन्तर-अनुशासनिक विधि कहते हैं।

#### **7 मिश्रित सांस्कृतिक उपागम का उपयोग**

जब दो या दो से अधिक सांस्कृतिक समूहों अथवा क्षेत्रों के विशेषज्ञ मिलकर किसी एक ही स्थान पर एक विशेष समस्या का अध्ययन करते हैं, तब इसे मिश्रित

सांस्कृतिक उपागम कहा जाता है। यदि एक अध्ययनकर्ता उसी सांस्कृतिक समूह का सदस्य हो जिसका वह अध्ययन कर रहा है तो वह कहीं अधिक तटस्थ रहकर यथार्थ तथ्यों को एकत्रित कर सकता है।

### अपनी प्रगति की जाँच करें

**निर्देश:** अ) अपने उत्तर प्रत्येक प्रश्न के बाद दिए गए रिक्त स्थान में लिखें।

व) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न-1 वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता क्यों हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 3.6 मूल्य

---

आज समाज में मूल्यों का ह्रास व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए एक गंभीर समस्या है। यदि व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है, समाज में सत्य ,प्रेम ,सहयोग, सहानुभूति, सहिष्णुता,बन्धुत्व का वातावरण पैदा करना है, राष्ट्र की रक्षा करनी है,उसकी एकता और अखंडता बनाए रखनी है व आर्थिक समृद्धि जानी है तो मुल्यों के महत्व को प्रत्येक व्यक्ति को न केवल समझना होगा वरन् उन्हें अपने जीवन में उतारना भी

होगा। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाजीकरण की प्रक्रिया ही उसे अन्य जीवों से पृथक् करती है। समाज के नियम, आदर्श अथवा मानदण्ड जब व्यक्ति अंतःकरण से अथवा विश्वास के रूप में स्वीकार करता है, तो उन्हें मूल्य की संज्ञा दी जाती है।

### 3.6.1 मूल्य का अर्थ

मूल्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'मूल' धातु से 'यत्' प्रत्यय को जोड़कर हुई है। इसका अर्थ है – कीमत, महत्व, योग्यता, उत्तमता, पारिश्रमिक आदि। अंग्रेजी में "Value" लैटिन भाषा के value से बना है। मूल्य शब्द का अर्थ उत्तम, श्रेष्ठ, सुन्दर या वरीयता से है। ऐसे कार्य, विचार, गुण, गतिविधियाँ या वस्तु जिसे हम दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ समझते हैं, मूल्य है।

मूल्य वह है जो मानव इच्छा को पूरा करता है। जीवित रहने के लिए इच्छाएँ पूरी करनी पड़ती हैं, परंतु हम जीवित क्यों रहना चाहते हैं ? इसके उत्तर में हम अपने जीवन के कुछ लक्ष्य या उद्देश्य बताएँगे, जिनके लिए हम जीते हैं। एक व्यक्ति कहता है कि कला की साधना के लिए, दूसरा कहता है कि वह सत्य की खोज के लिए , तीसरा कहता है वह ईश्वर की प्राप्ति के लिए जीवित रहना चाहता है।

- **डीवी के शब्दों में,**

“मूल्य आन्तरिक रूप से पसन्द से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि केवल उन्हीं से सम्बन्धित है, जिनको कि निर्णय का सम्बन्धित है, जो कि उस सम्बन्ध की परीक्षा के बाद दिया जाता है,जिस पर वस्तु निर्भर करती है।”

### 3.6.2 मूल्य की अवधारणा

मूल्य की अवधारणा मनुष्य के प्रत्येक चुनाव, निश्चय, निर्णय तथा कार्य में विद्यमान है। जब हम दो वस्तुओं या मनोरथों में चुनाव करते हैं ,तो उस मनोरथ को प्राप्त करने का निश्चय करते हैं, जो अधिक श्रेष्ठ है और इसी निर्णय के अनुसार जीवन में कार्य

करते हैं। इस चुनाव, निर्णय तथा निश्चय में उन वस्तुओं या मनोरथों के मूल्य की अवधारणा छिपी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में प्रतिदिन ऐसे निर्णय करता रहता है। ये निर्णय उसे हर कदम पर करने पड़ते हैं अन्यथा उसके लिए हर कार्य करना कठिन हो जाता है। वह एक कार्य या वस्तु को पसंद करता है तथा दूसरी को नापसंद, एक व्यक्ति की प्रशंसा करता है तथा दूसरे की निंदा करता है, वह एक कार्य को शुभ मानता है और दूसरे को अशुभ, एक विधि को ठीक दूसरी को गलत समझता है, एक दृश्य को सुंदर और दूसरे को असुंदर कहता है।

शैशव में बच्चे का मन एकदम निर्मल होता है, न तो इसमें कीचड़ होता है और न ही जलकुंभी, उसका मन साफ स्फटिक होता है। आज के बच्चे भविष्य के नागरिक हैं, यदि उनमें अभी से अच्छे संस्कार मिलेंगे तो वह हमारी सांस्कृतिक धरोहर, लोकतांत्रिक मूल्यों, धर्म निरपेक्षता की भावना, सामाजिक समरसता के लिए हर संभव चेष्टा करेगा। शांति, सहचर्य और विश्व कल्याण उसके आदर्श होंगे।

### 3.6.3 मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्य दो प्रकार के होते हैं—

1 आंतरिक अथवा स्वतः प्रेरित

2 बाह्य अथवा परतः प्रेरित

जो मूल्य अन्य मूल्यों के लिए साधन मात्र गिने जाते हैं अथवा उनकी प्राप्ति में सहायक होते हैं, वे बाह्य अथवा परतः प्रेरित कहलाते हैं, जैसे भोजन से स्वास्थ्य अच्छा होता है, अतः भोजन बाह्य अथवा सहायक मूल्य और स्वास्थ्य आंतरिक मूल्य कहा जा सकता है। कभी—कभी एक ही वस्तु सहायक मूल्य एवं आन्तरिक मूल्य रख सकती है, किन्तु स्वतंत्र दृष्टि से देखने में वह स्वयं भी शुभ हो सकती है। आधुनिक काल में मूल्य—शास्त्रवेत्ताओं में अधिकांश लोगों का मत दोनों का अस्तित्व स्वीकार करता है, किन्तु आन्तरिक एवं सहायक मूल्यों का अस्तित्व स्वीकार करता है, किन्तु आन्तरिक मूल्यों को प्राथमिक और सहायक मूल्यों को द्वैतिक अथवा गौण मानता है।

मूल्यों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। उपरोक्त सभी वर्गीकरण में एक वर्ग का मूल्य दूसरे वर्ग से विपरीत है। इसी कारण सभी वर्गों के मूल्य दो विरोधी वर्गों में दिखलाये गये हैं। अतः प्रश्न यह है कि संख्या कितनी है? अर्बन के अनुसार मानवीय मूल्य आठ हैं—

1. **शारीरिक मूल्य:** इनसे शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, अतः इन्हें शारीरिक मूल्य कहा जाता है। उदाहरणार्थ, भोजन, वस्त्र।
2. **आर्थिक मूल्य:** इनसे मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जैसे धन, सम्पत्ति आदि का आर्थिक मूल्य है।
3. **मनोरंजन का मूल्य:** इनसे मनुष्य का मन बहलाव होता है, आमोद—प्रमोद प्राप्त होता है, खेल—कूद आदि।
4. **साहचर्य मूल्य:** इनसे मनुष्य में एक साथ रहने की भावना उत्पन्न होती है जैसे मित्रता।
5. **चारित्रिक मूल्य:** इनके द्वारा मानव आचरण का ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे, सच्चाई व ईमानदारी।
6. **सौन्दर्य—बोधक मूल्य:** इनसे किसी वस्तु की सुन्दरता का बोध होता है। उदाहरणार्थ, कला—कृति का मूल्य सौन्दर्यबोधक है।
7. **बौद्धिक मूल्य:** इनसे मनुष्य की बौद्धिक उपलब्धि का पता चलता है। जैसे, ज्ञान का मूल्य बौद्धिक है।
8. **धार्मिक मूल्य:** इन मूल्यों का सम्बन्ध धार्मिक भावना से है। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग आदि धार्मिक मूल्य हैं।

### 3.6.4 मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता

वर्तमान संसार मानवीय मूल्यों की कमी के कारण गंभीर संकट की स्थिति से गुजर रहा है। प्राचीन काल की शिक्षा परंपरा में मूल्यों को संवर्धित कर आचार्य शिष्यों को शिक्षा प्रदान किया करते थे परंतु वर्तमान समय में मूल्यों की गंभीर अवहेलना की जा



रही है जिससे उभरते छात्र व शिक्षक दोनों में चारित्रिक कलुषता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। यही कारण है कि सभी शिक्षा आयोगों ने शिक्षा में आध्यात्मिकता एवं मूल्यों की अनिवार्यता को स्वीकार कर लिया है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए एक मूल्य प्रणाली रखता है, जिसमें जीवन के मूल्य एवं उनको बढ़िया या घटिया ठहराने का सिद्धांत विद्यमान है। प्रत्येक समाज में सभी व्यक्ति के मूल्य एक जैसे नहीं होते हैं। व्यक्ति के विभिन्न मूल्यों के प्राथमिकता क्रम में एक व्यवस्था होती है। किसी परिस्थिति में व्यक्ति के दो या अधिक मूल्यों में विरोध भी हो सकता है। व्यक्ति को अपने जीवन में कई बार ऐसे द्वंद्वों का सामना करना पड़ता है। अनेक बार वह ठीक प्रकार से इनका सामना नहीं कर पाता है, क्योंकि विरोधी मूल्य के प्रति उसकी आस्था और प्राथमिकता निर्णय लेने में बाधक होता है। मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता अन्तरवैयक्तिक तथा अन्तः वैयक्तिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। दो विरोधी परंतु प्रबल इच्छाओं के कारण व्यक्ति स्वयं को दो व्यवहार करने के लिए खिंचा सा अनुभव करता है। मनुष्य की यह स्थिति यथाशीघ्र समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा व्यक्ति का समायोजन व व्यवहार प्रभावित होता है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता का बहाना बनाकर मूल्य निरपेक्ष शिक्षा का नारा दिया गया। देश में विधटनकारी तत्व आज पहले से कहीं अधिक हैं। युवा पीढ़ी विध्वंसात्मक कार्यों में जुटी दिखाई देती है। समाज के मूल्य क्षणभंगुर हो गए हैं। शिक्षा प्रणाली मनुष्य में राग, द्वेष, हर्ष, शोक उत्पन्न कर रही है। ये ही मूल्यों का ह्रास होने का प्रमुख कारण है। शिक्षा न तो मनुष्य में आत्मनियंत्रण, न ही स्वाध्याय का विकास कर रही है। आज व्यक्ति अपने कर्तव्यों से विमुख हो रहा है उसमें मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता की भावना विकसित हो रही है। मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता एक बड़ी चुनौती है। शिक्षा की पद्धति में सुधार द्वारा इसे कम किया जा सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

निर्देश: अ) अपने उत्तर प्रत्येक प्रश्न के बाद दिए गए रिक्त स्थान में लिखें।

व) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न-1 मूल्य से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 3.7 संस्कृति

---

आदि मानव प्रारंभ से सुसंस्कृत नहीं था वरन् जंगली पशु के समान जीवन व्यतीत करता था। धीरे-धीरे उसने सभ्य बनना सीखा। इस प्रकार मानव ने जो उच्चतम सुसंस्कृत व्यवहार करना प्रारंभ किया। जीवन की विधि है। जो भोजन हम खाते हैं, और जिस भगवान की हम पूजा करते हैं, ये सभी संस्कृति के पक्ष हैं। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके बारे में हम सोचते हैं।

### 3.7.1 संस्कृति का अर्थ

संस्कृति को अंग्रेजी में 'कल्चर' कहते हैं। 'कल्चर' लेटिन भाषा के 'कल्चस' से लिया गया है जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या पूजा करना। संक्षेप में किसी वस्तु को यहाँ तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि उसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके। यह ठीक उसी तरह है जैसे संस्कृत भाषा का शब्द 'संस्कृति'। 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' करना से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं 'प्रकृति' (मूल स्थिति) संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और 'विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृत' या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृति हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो 'विकृत' हो जाता है।

### 3.7.2 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके बारे में हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। इसमें वे सभी चीजें सम्मिलित हैं जो हमने एक सभ्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त की हैं। एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ संस्कृति कही जा सकती हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तु दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के पक्ष हैं तथापि संस्कृति में रीतिरिवाज, परंपराएँ, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित है। भारतीय समाज और संस्कृति की अनेकरूपता होते हुए भी संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप एक सांस्कृतिक क्षेत्र है और शताब्दियों से धारणाएँ, संस्थाएँ और साधन आदि प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान में आते जाते प्रत्येक चरण में बदलते रहते हैं। इस प्रकार संस्कृति मानव जनित पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है जिसमें सभी भौतिक और अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं। सभी समाज वैज्ञानिकों में एक सामान्य सहमति है कि संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आन्तरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। ये चिह्नों द्वारा भी स्थानान्तरित किए जा सकते हैं जिनमें मानवसमूहों की विशिष्ट उपलब्धियाँ भी समाहित हैं। इन्हें शिल्पकलाकृतियों द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया जाता

है। अतः संस्कृति का मूल केन्द्र बिन्दु उन सूक्ष्म विचारों में निहित है जो एक समूह में ऐतिहासिक रूप से उनसे सम्बन्ध मूल्यों सहित विवेचित होते रहे हैं। संस्कृति वह है जिसके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों और ज्ञान को विकसित करते हैं। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्त है।

### 3.7.3 संस्कृति की सामान्य विशेषतायें

अब हम कुछ सामान्य विशेषताओं का विवेचन करेंगे जो संपूर्ण संसार की विभिन्न संस्कृतियों में समान हैं—

1. **संस्कृति सीखी जाती है और प्राप्त की जाती है**— अर्थात् मानव के द्वारा संस्कृति को प्राप्त किया जाता है इस अर्थ में कि कुछ निश्चित व्यवहार हैं जो जन्म से या अनुवांशिकता से प्राप्त होते हैं, व्यक्ति कुछ गुण अपने माता—पिता से प्राप्त करता है लेकिन सामाजिक—सांस्कृतिक व्यवहारों को पूर्वजों से प्राप्त नहीं करता है। वे पारिवारिक सदस्यों से सीखे जाते हैं, इन्हें वे समूह से और समाज से जिसमें वे रहते हैं उनसे सीखते हैं। यह स्पष्ट है कि मानव की संस्कृति शारीरिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती है। जिनके माध्यम से वे कार्य करते हैं।
2. **संस्कृति लोगों के समूह द्वारा बाँटी जाती है**— एक सोच या विचार या कार्य को संस्कृति कहा जाता है यदि यह लोगों के समूह के द्वारा बाँटा और माना जाता या अभ्यास में लाया जाता है।
3. **संस्कृति संचयी होती है**— संस्कृति में शामिल विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जा सकता है। जैसे—जैसे समय बीतता जाता है, ज्यादा से ज्यादा ज्ञान उस विशिष्ट संस्कृति में जुड़ता चला जाता है, जो जीवन में परेशानियों के समाधान के रूप में कार्य करता है, पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। यह चक्र बदलते समय के साथ एक विशिष्ट संस्कृति के रूप में बना रहता है।

4. **संस्कृति परिवर्तनशील होती है**— ज्ञान, विचार और परम्परायें नयी संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं। समय के बीतने के साथ ही किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं।

5. **संस्कृति गतिशील होती है**— कोई भी संस्कृति स्थिर दशा में या स्थायी नहीं होती है। जैसे समय बीतता है संस्कृति निरंतर बदलती है और उसमें नये विचार और नये कौशल जुड़ते चले जाते हैं और पुराने तरीकों में परिवर्तन होता जाता है। यह संस्कृति की विशेषता है जो संस्कृति की संचयी प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है।

### 3.7.3 संस्कृति निष्पक्षता / तटस्थता

आज लोगों ने संस्कृति को दो भागों में बाँट रखा है, शहरी और ग्रामीण। मुख्यधारा और उपधारा। जनजातीय एवं अन्य। विश्वदृष्टि से पूरा भारतीय समाज एक ही है जिसमें अनेकों मतान्तर होते हुए भी आदमी का आदमी से और अपने परिवेश से एक गहरी आत्मीयता का सम्बन्ध है। यह सही है कि जैन, बौद्ध, हिन्दू मतों का आधार पक्ष लगभग समान रहा है। वह बात इस्लामिक मतों में नहीं है पर मनुष्य मत का कट्टर अनुयायी होते हुए भी देशकाल की सीमाओं और उसकी अपेक्षाओं से बाहर भी जीता है। यह सत्य है कि सर्वधर्म सद्भाव की बात बहुत दूर तक नहीं चल पाती है इसलिए मतों में तटस्थता की बात पर बल दिया जाता है।

किसी समाज का अवलोकन करने के लिए अवलोकनकर्ता में स्वयं अपने समाज से कुछ तटस्थता आवश्यक होती है और तटस्थता के प्रभावी होने के लिए उसका भावना और बुद्धि दोनों से सम्बन्ध होना आवश्यक है। किसी दूसरे समाज में अवलोकन कार्य अपने समाज के अवलोकन के लिए तैयारी का कार्य करता है पर यह अत्यंत व्यय साध्य है। विकासशील देश इतना खर्च नहीं उठा सकेंगे। इन परिस्थितियों में सबसे अच्छा यही होगा कि तरुण समाज वैज्ञानिक समाज के किसी ऐसे हिस्से में काम शुरू करें जो उनके अपने समाज से भिन्न हो। तीव्र स्तरीकरण व्यवस्था का एक परिणाम है, ऊपरी और निचले समूहों की संस्कृति और जीवन के विषय में उदासीनता और

भारत जैसे विशाल देश में पर्याप्त प्रादेशिक अनेकरूपता भी है। ये दोनों बातें किसी हद तक भारतीय समाज वैज्ञानिक के लिए किसी अजनबी समाज में पहला क्षेत्र अध्ययन करने के लिए साधनों के अभाव में क्षतिपूर्ति कर देती हैं। क्षेत्र कार्य कई प्रकार का होता है। किसी एक अन्वेषक द्वारा एक छोटे से समुदाय या समूह के गहन अध्ययन से लगाकर एक देशव्यापी सर्वेक्षण तक, जिसमें बहुत से अन्वेषक उत्तरदाताओं से वास्तविक भेंट का काम करने के लिए रखे गए हों। वे सभी क्षेत्र कार्य जिसमें समाज वैज्ञानिक का अपने से भिन्न संस्थाओं, धारणाओं और मूल्यों वाले लोगों से किसी न किसी प्रकार के धनिष्ठ संपर्क में आना निहित होता है, संस्कृति मुक्त/तटस्थता उत्पन्न करता है।

### अपनी प्रगति की जाँच करें

**निर्देश:** अ) अपने उत्तर प्रत्येक प्रश्न के बाद दिए गए रिक्त स्थान में लिखें।

व) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न-1 संस्कृति का अर्थ व अवधारणा क्या हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 3.8 अवैयक्तिकता

---

अनुशासनात्मक ज्ञान की विशेषताओं में अवैयक्तिकता भी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अवैयक्तिकता ज्ञान जानने से पहले अवैयक्तिकता को समझना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व गुणों में बहुत अधिक विभिन्नता पाई जाती है। कुछ ज्ञान के क्षेत्र में विशेष रुचि प्रदर्शित करते हैं इनके वैयक्तिक गुणों में सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं। इनकी सामाजिक क्षेत्र में विशेष पहचान होती है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो बहुत अधिक अवैयक्तिक होते हैं। इनमें निजता का गुण विशेष पाया जाता है। अवैयक्तिक ज्ञान की बात की जाए तो यह ज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है पिछले 20 वर्षों पूर्व अज्ञात था लेकिन दर्शन तथा ज्ञान के क्षेत्र में इसकी विशेष पहचान है। अवैयक्तिक ज्ञान की निश्चित रूप से विशेष प्रतिबद्धता होती है। ज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न विषयों की व्यवस्थित एवं विशेष सीमा होती है। ज्ञान विशुद्ध तथा प्रयुक्त दोनों प्रकार का होता है। विशुद्ध से तात्पर्य ज्ञान को केवल जानने से नहीं बरन् समझने से है। इस ज्ञान में नियम, सिद्धांत, व सूचनाएँ विस्तृत रूप में निहित होती है। प्रयुक्त ज्ञान से तात्पर्य वह ज्ञान है मुक्त, व्यवस्थित, एवं विस्तारित होता है। यह ज्ञान क्रिया को अधिक महत्व देता है।

---

## 3.9 सत्यापनशीलता और प्रमाण

---

वैज्ञानिक पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा निष्कर्ष का किसी भी समय सत्यापन किया जा सकता है। वास्तव में वैज्ञानिक पद्धति किसी भी व्यक्ति की निजी पद्धति नहीं होती है। इसका प्रयोग कोई भी वैज्ञानिक किसी भी समय व किसी भी प्रकार के अध्ययन विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कर सकता है। इसलिए यदि किसी वैज्ञानिक को संदेह हो कि किसी विषय के सम्बन्ध में उसके पहले के किसी वैज्ञानिक द्वारा निकाला गया निष्कर्ष ठीक है अथवा नहीं, तो वह वैज्ञानिक

पद्धति अपनाकर उस निष्कर्ष के सत्यापन की जांच या पुनर्परीक्षा कर सकता है। वैज्ञानिक अध्ययन की एक प्रमुख विशेषता उसकी सत्यापनशीलता है। इसका तात्पर्य है कि किसी भी ऐसे अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता जिससे प्राप्त तथ्यों की पुनर्परीक्षा न की जा सकती हो। अध्ययन से सम्बन्धित निष्कर्ष यदि यथार्थ हों तो उनकी किसी भी समय पुनर्परीक्षा करके उनका सत्यापन किया जा सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता इसलिए भी आवश्यक है जिससे सम्बन्धित निष्कर्षों का कोई भी अन्य अध्ययनकर्ता सत्यापन कर सके।

जेम्स लूथर ने लिखा है कि जिस पद्धति द्वारा पुनर्परीक्षा सम्भव नहीं, वह वैज्ञानिक पद्धति नहीं हो सकती, वह या तो दार्शनिक अथवा काल्पनिक पद्धति होती है। यद्यपि वैज्ञानिक पद्धति कई दृष्टियों से परिपूर्ण होती है, फिर भी इसमें कुछ कमियाँ हैं। किसी भी व्यवहार के अध्ययन करने में चूँकि कई तरह के डिजाइन बन सकते हैं, जिसकी प्रकृति भी काफी जटिल होती है, अतः त्रुटि किए जाने की संभावना सूचनाओं को इकट्ठा करते समय या उसकी व्याख्या करते समय या उसकी व्याख्या करते समय काफी होता है। इस पद्धति में दो बातों पर विचार करना आवश्यक है—

- प्रमाण जिन पर ध्यान दिया जा रहा है।
- प्रमाणों की व्याख्या किस तरह से की जा रही है।

किसी भी आदर्श शोध परिस्थिति में व्यक्ति का प्रेक्षण पूर्णतः वस्तुनिष्ठ, अनुभवजन्य, क्रमबद्ध, तथा नियंत्रित होना चाहिए, ताकि जिस व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा है, उसके मापन एवं प्रेक्षण पूर्णतः यथार्थ हो। परंतु सच्चाई यह है कि कोई भी अध्ययन आदर्श नहीं होता है। कोई भी अध्ययन निश्चित रूप से थोड़ा कम या ज्यादा वस्तुनिष्ठ हो सकता है, कम या ज्यादा अनुभवजन्य हो सकता है तथा कम या ज्यादा क्रमबद्ध हो सकता है।



अपनी प्रगति की जाँच करें

निर्देश: अ) अपने उत्तर प्रत्येक प्रश्न के बाद दिए गए रिक्त स्थान में लिखें।

व) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न-1 सत्यापन से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

### 3.10 इकाई सारांश

---

इस इकाई में हमने अनुशासनात्मक ज्ञान और उसकी विशेषताओं का अध्ययन किया।

अनुशासनात्मक ज्ञान का सम्बन्ध अधिगम प्रक्रिया की ऐसी युक्तियों से है जिनके फलस्वरूप बालकों को अपने वैज्ञानिक क्रियाकलाप वस्तु का प्रेक्षण करने और उसके साथ पारस्परिक क्रिया करने के अवसर मिलते हैं और इस प्रकार से विभिन्न प्रकार की दक्षताएँ भी प्राप्त कर लेते हैं। अनुशासनात्मक ज्ञान का विशेषताएँ इस प्रकार हैं— सार्वभौमिकता, वस्तुनिष्ठता, मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता, संस्कृति निष्पक्षता/तटस्थता, अवैयक्तिकता, सत्यापनशीलता और प्रमाण सार्वभौमिकता का आशय किसी संस्कृति विशेषता का प्रत्येक स्थान में प्रसार होना है। वस्तुनिष्ठता किसी अध्ययन से सम्बन्धित

वह विशेषता है जो यथार्थ अवलोकन पर आधारित होती है। जब हम अपने धर्म, जाति प्रजाति, विश्वास-क्षेत्र एवं निजी विचारों से पृथक रहकर कोई अध्ययन करता है, तब ऐसे अध्ययन को हम वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहते हैं। समाज के नियम, आदर्श अथवा मानदण्ड जब व्यक्ति अंतःकरण से अथवा विश्वास के रूप में स्वीकार करता है, तो उन्हें मूल्य की संज्ञा दी जाती है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके बारे में हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। इसमें वे सभी चीजें सम्मिलित हैं जो हमने एक सभ्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त की हैं। वैज्ञानिक अध्ययन की एक प्रमुख विशेषता उसकी सत्यापनशीलता है। इसका तात्पर्य है कि किसी भी ऐसे अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता जिससे प्राप्त तथ्यों की पुनर्परीक्षा न की जा सकती हो।

---

### 3.11 चिंतन के लिए प्रश्न

---

**प्रश्न 1** वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की विधियाँ क्या हैं ?

**प्रश्न 2** सार्वभौमिकता से आप क्या समझते हैं ?

**प्रश्न 3** आप कैसे कह सकते हैं कि संस्कृति गतिशील है।

**प्रश्न 4** मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता क्या है ?

---

### 3.12 प्रगति की जांच के लिए उत्तर

---

**प्रश्न—** सार्वभौमिकता की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ?

1 सार्वभौमिकता की प्रक्रिया का विकास लघु एवं बृहत् परम्पराओं के पारस्परिक सम्बंधों में होता है।

2. सार्वभौमिकता में लघु परम्पराएँ अपना अस्तित्व समाप्त नहीं करती।

3. लघु एवं वृहत् दोनों परंपराएँ पवित्रता के दृष्टिकोण से समान रूप से बनी रहती हैं।
4. इस प्रकार वृहत् परम्पराएँ पूर्णतः नवीन दिखाई देने के बाद भी पूरी तरह नवीन नहीं होती, बल्कि वे वृहत् परम्पराएँ मूलतः लघु परम्पराओं का ही संशोधित रूप हाती हैं।
5. सार्वभौमिकता स्थानीय धार्मिक विश्वासों एवं कर्मकाण्डों का व्यापक विस्तार है।

**प्रश्न—** वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता क्यों हैं ?

- 1 यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए
- 2 वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए
- 3 सामान्य भ्रान्तियों को दूर करने के लिए
- 4 अनुसंधान के नये क्षेत्रों को विकसित करने के लिए
- 5 निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए
- 6 तथ्यों के सत्यापन के लिए आवश्यक

**प्रश्न—** मूल्य से आप क्या समझते हैं ?

जब हम दो वस्तुओं या मनोरथों में चुनाव करते हैं ,तो उस मनोरथ को प्राप्त करने का निश्चय करते हैं, जो अधिक श्रेष्ठ है और इसी निर्णय के अनुसार जीवन में कार्य करते हैं। इस चुनाव, निर्णय तथा निश्चय में उन वस्तुओं या मनोरथों के मूल्य की अवधारणा छिपी है

**प्रश्न—** संस्कृति का अर्थ व अवधारणा क्या हैं ?

संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके बारे में हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। इसमें वे सभी चीजें सम्मिलित हैं जो हमने एक सभ्य समाज के सदस्य के नाते

प्राप्त की हैं। एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियों संस्कृति कही जा सकती हैं।

**प्रश्न—** सत्यापन से आप क्या समझते हैं ?

यदि किसी वैज्ञानिक को संदेह हो कि किसी विषय के सम्बन्ध में उसके पहले के किसी वैज्ञानिक द्वारा निकाला गया निष्कर्ष ठीक है अथवा नहीं, तो वह वैज्ञानिक पद्धति अपनाकर उस निष्कर्ष के सत्यापन की जांच या पुनर्परीक्षा कर सकता है।

---

### 3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

- मित्रा, विधानिवास (2000), नदी नारी और संस्कृति, प्रभात पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- कुपुस्वामी, बी. (2003), समाज मनोविज्ञान, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
- त्रिपाठी, लाल बच्चन (2003), आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा
- त्रिपाठी, रमाशंकर (2004), सामाजिक शोध एवं सांख्यिकीय तार्किकता, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी
- सिंह, अरुण कुमार (2014), मनोविज्ञान समाज तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
- दुबे, के. एस.(2015), शालेय संस्कृति, नेतृत्व एवं परिवर्तन, राधा प्रकाशन मन्दिर